एड्स के लिए टीका

मिथक और यथार्थ

ज़्यां लुई एक्सलर

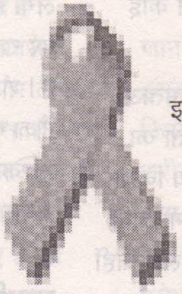

एड्स मिथकीय ऊंचाइयों को छूने लगा है। यह एक थ्रिलर सा बन गया है: यह मानव अस्मिता के लगभग हर पहलू को स्पर्श करता है - जीवन और मृत्यु, प्यार और नफरत, यौन और खून, मातृत्व और प्रसव, नैतिकता व प्रतिकार की धारणा, गलत-सही के फैसले। एड्स समाज के सबसे जोखिमग्रस्त, बदनामशुदा और हाशिए के तबकों के साथ-साथ सबसे ग्लैमरस व विशिष्ट तबकों को भी प्रभावित करता है। व्यक्तियों और परिवारों पर इसके प्रभाव के अलावा एड्स का व्यापक सामाजिक असर भी है। इसकी वजह से सामाजिक उथल-पुथल, आर्थिक बोझ के बढ़ने तथा आम स्वास्थ्य के क्षेत्र में हुई तरक्की के खटाई में पड़ने की आशंकाएं भी हैं।

कई लोगों के लिए एड्स एक बीमारी ही नहीं बल्कि मानव अधिकारों और मूल्यों का भी सवाल है। इसीलिए यह ऐसी भावनाओं को जन्म देता है जो शायद ही किसी अन्य बीमारी के साथ सामने आती हों। बतौर एक वैज्ञानिक मैं इस महामारी के इन मानवीय पहलुओं को नकार तो नहीं सकता मगर लोगों से आग्रह करूंगा कि एड्स के विज्ञान को विज्ञान की तरह देखें, मिथक की तरह नहीं। हमें अपनी बढ़ी हुई अपेक्षाओं को भी छोड़ना होगा और भय के अतिरेक को भी त्यागना होगा ताकि हम यथास्थिति से निपट सकें। मेरे विषय, एच.आई.वी. टीके के क्षेत्र में स्थिति यह है - टीका बनाना निश्चित तौर पर सम्भव है और सम्भवतः एक 'कारगर' टीका अगले दस सालों में खोज लिया जाएगा। सोचना यह है कि इसके लिए अनुसंधान के प्रति किस तरह का संकल्प ज़रूरी है और इस बात को भी स्पष्ट रूप से समझना होगा कि 'कारगर' टीके से हमारा आशय क्या है?

चुनौतियों का आकलन

शुरुआत में एड्स वायरस के टीके के विकास की वैज्ञानिक चुनौतियों को बहुत कम आंका गया था। शेखचिल्ली सोच के धनी कुछ अमरीकी (और युरोपीय) वैज्ञानिक मीडिया व आम जनता के बीच झूठी आस जगाने को आतुर थे (मसलन 1980 के दशक के मध्य में कुछ वैज्ञानिकों ने दावा किया था कि 3-5 साल में एड्स का टीका तैयार हो जाएगा)। कभी-कभी मात्र दिखावे के लिए ऐसे दावे किए गए तो कभी-कभी यह दर्शाने के लिए किए गए कि विज्ञान इंसानों की किसी भी उम्मीद को पूरा कर सकता है।

इसकी प्रतिक्रिया में कुछ लोग दूसरी अति पर चले गए थे। इन लोगों ने दावा किया था कि इस प्रयास में सफलता असम्भव है और शायद यह प्रयास भी खतरनाक है। पश्चिमी देशों में इन अंधाधुंध वायदों और फूहड़ भय के बीच कुछेक लोग ही यह देख पा रहे थे कि विकासशील देशों में यह महामारी किस गति से बढ़ रही है। और जो लोग इस बारे में सोच रहे थे उनकी दलील यह थी कि इस टीके का न तो कोई बाज़ार है और न ही इन्फ्रास्ट्रक्चर है। फिर क्यों इसमें सिर खपाया जाए?

विकासशील देशों के शोधकर्ता और स्वास्थ्य अधिकारी

इन दो अतिरेकों के बीच फंस गए थे। कभी-कभार इन्होंने मध्यमार्ग अपनाने की अक्लमंदी दिखाई। भारत उन चन्द देशों में से है जिन्होंने सही राह अपनाई। एक विवेकपूर्ण वैज्ञानिक स्वर्गीय प्रोफेसर रामलिंगस्वामी ने सरकार को राज़ी किया कि टीका एक प्राथमिकता है, कि अंततः टीका बनाया जा सकता है और उपयुक्त वैज्ञानिक सुरक्षा के उपाय करके नैतिकतापूर्ण अनुसंधान सम्भव है। उन्होंने सरकार को आश्वस्त कर दिया कि इस मामले में कोई शॉर्ट कट नहीं है।

सरकार ने इस मामले में भारत में उपलब्ध क्षमताओं यानी अपनी उत्पादन क्षमता और उम्दा शोध क्षमता का उपयोग करने की ठानी। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि विदेशी समूहों से भी साझेदारी की जाएगी ताकि वे संसाधन हासिल किए जा सकें जो देश में उपलब्ध नहीं हैं। जैसे नवीन बायोटेक टीकों के मॉडल तथा यू.एस.ए., थाईलैण्ड व अफ्रीका में किए गए शुरुआती परीक्षणों के परिणाम व सबक। इस व्यावहारिक नीति के फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय एड्स वैक्सीन इनिशिएटिव (IAVI) व उसके साझेदारों के साथ संयुक्त प्रयास सम्भव हुए और राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान (NARI, पुणे) व भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् के अन्य संस्थानों में शोध क्षमता सुदृढ़ हुई।

एड्स टीका और एड्स का उपचार निश्चित रूप से उच्च टेक्नॉलॉजी के दायरे में आते हैं। यह वह दायरा है जिसमें आम तौर पर विकासशील देशों की पहुंच बहुत कम है। अधिकांश विकासशील देशों में प्रशिक्षण व उपकरणों का इतना अभाव है कि वे यू.एस. या युरोपीय अनुसंधान संस्थाओं की रफ्तार से कदम मिलाकर नहीं चल सकते। कई देशों को तो लगा कि वे निष्क्रिय प्रेक्षक हैं और उन्हें चर्चाओं में सिर्फ आलीशान सम्मेलनों की राजनैतिक शोभा बढ़ाने के लिए बुलाया जाता है। विकासशील देशों से सलाह किए बगैर उनके बारे में आकलन किए जाते थे, फैसले लिए जाते थे। एक ओर विकसित देशों का दर्प था तो दूसरी ओर विकासशील देशों में यह प्रवृत्ति थी कि अपने देश में इस महामारी के अस्तित्व को ही नकारा जाए। अलबत्ता, स्थिति में सुधार आ रहा है। एड्स अनुसंधान ने अभूतपूर्व अंतर्राष्ट्रीय उत्तर-उत्तर, उत्तर-दक्षिण सहयोग को बढ़ावा दिया है। अंतर्राष्ट्रीय एड्स वैक्सीन इनिशिएटिव ही पांच सर्वाधिक प्रभावित देशों में स्थानीय सरकार व संस्थाओं के साथ मिलकर काम कर रहा है।

इस महामारी में हम सबका कुछ न कुछ दांव पर लगा है और हम सभी जानते हैं कि हम एक डरावने टापू पर खड़े होकर वैज्ञानिक अज्ञान के समंदर को देख रहे हैं। शायद हम समझ चुके हैं कि हम सबको एक ही रक्षक नौका चाहिए, एक ही नक्शा चाहिए। मगर अभी यह कहना मुश्किल है कि विकसित और विकासशील देशों के बीच सम्बंध उतने अच्छे हो गए हैं, जितने होने चाहिए।

प्राथमिकताएं

सबसे पहली बात तो यह है कि औद्योगिक देशों में एड्स वैक्सीन अनुसंधान का संचालन सार्वजनिक व निजी दोनों क्षेत्रों द्वारा किया जा रहा है। दोनों के सख्त अनुसंधान व विकास एजेंडा हैं, बजट की कठोर सीमाएं हैं और समय सीमाएं हैं। ये अधिकांश विकासशील देशों के परिवेश से मेल नहीं खाते जहां लचीलेपन, अधिक समय व धन की आवश्यकता है। इसका एक दुखद उदाहरण तब सामने आया जब काइरॉन वैक्सीन्स कम्पनी ने थाईलैण्ड में अपना अनुसंधान कार्यक्रम सिर्फ इसलिए बन्द कर दिया क्योंकि यह उसके बिज़नेस ढांचे में फिट नहीं होता था।

दूसरी बात है कि औद्योगिक देशों की अपेक्षा अधिकांश विकासशील देशों में शोधकर्ता कम हैं। विकासशील देशों के शोधकर्ता अक्सर एकाधिक शोध व प्रबंधन के कामों में उलझे रहते हैं और मुश्किल वित्तीय परिस्थिति में काम करते हैं। दूसरी ओर विकसित देशों के शोधकर्ता अपने शोध पर एकाग्रता से ध्यान दे पाते हैं और कई बार अमूर्त अकादमिक मुद्दों पर भी शोध करते रहते हैं। दोनों ही अपने-अपने राजनैतिक माहौल में फंसे होते हैं और राष्ट्रीय नीति व गौरव का भी ध्यान रखना होता है।

मगर विकसित देशों के शोधकर्ता मानते हैं कि उनका काम ही वैध है और ध्यान देने योग्य है। विकासशील व विकसित देशों के शोधकर्ताओं के बीच इस असंतुलन की वजह से तमाम निरर्थक तनाव पैदा होते हैं और एड्स टीके के निर्माण व उसे ज़रूरतमंद लोगों को उपलब्ध कराने के साझा लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा आती है।

अंतिम बात यह है कि सबसे ज़्यादा प्रभावित देशों के शोधकर्ताओं में निराशा का एहसास पनप सकता है। परीक्षणों की प्रक्रिया लंबी व पेचीदा होती है - सबसे आशावादी स्थिति में भी प्रथम इंसानी परीक्षण और टीके के आम उपयोग के बीच 6 वर्ष का अंतराल होता है और इतिहास गवाह है कि विकासशील देशों में टीका आम तौर पर उपलब्ध होते-होते 20 साल और लग सकते हैं।

विज्ञान ने अक्सर ऐसे टीके उपलब्ध कराए हैं जो इतने महंगे होते हैं कि विकासशील देशों में इनका उपयोग असम्भव होता है। और जब इनकी कीमत कम हो जाती है, तब भी समृद्ध देश इनके विकासशील देशों में उपयोग हेतु ज़रूरी इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार करने में कोई मदद देने को तैयार नहीं होते। यदि हमें विकासशील देशों के वैज्ञानिकों को प्रेरित करना है तो उन्हें यह आश्वासन देना होगा कि इस बार स्थिति अलग होगी; कि इस बार राजनीति, राष्ट्रीयता, और व्यापारिक लाभ इस काम में बाधक नहीं बनेंगे।

तकनीकी पेचीदगी

चाहे व्यक्ति कितना ही प्रेरित और नए नज़रिए से उत्साहित हो मगर एड्स टीके पर काम करने वाले किसी भी व्यक्ति के सामने कई मुश्किलें आएंगी। एड्स वायरस जिनेटिक रूप से अति-विविधतापूर्ण है - यह लगातार बदलता रहता है। इसकी वजह से दुनिया के विभिन्न इलाकों में एड्स वायरस की छह उप-किस्में विकसित हो गई हैं। आज ये उप-किस्में संकरण कर रही हैं। यह सही है कि वायरस लैंगिक प्रजनन नहीं करते मगर आज दुनिया भर में इन वायरसों के जिनेटिक पुनर्मिश्रित रूप उभर रहे हैं। हम यह नहीं कह सकते कि वायरस की एक उप-किस्म से सुरक्षा प्रदान करने वाला टीका अन्य उप-किस्मों से भी सुरक्षा प्रदान करेगा। वैसे कुछ ताज़ा शोध बता रहे हैं कि इस तरह की विविध-किस्म सुरक्षा सम्भव हो सकती है। मगर हो सकता है कि अन्ततः बहु-किस्म टीका विकसित करना पड़े (ऐसा कई अन्य रोगों के संदर्भ में हुआ भी है)। इसका मतलब होगा कि हमें अलग-अलग उप-किस्मों के विरुद्ध टीका तैयार करके उनका कॉकटेल बनाना होगा।

इससे भी बड़ी समस्या यह है कि हम ठीक-ठीक नहीं जानते कि शरीर स्वयं को एड्स से कैसे बचा सकता है। इसका रामबाण तो एक एण्टीबॉडी होगी जो वायरस की किसी जीवनदायी प्रक्रिया को तबाह कर दे ताकि वह शरीर में डेरा न बना पाए। आदर्श रूप में कोई भी टीका ऐसा होना चाहिए जो वायरस के शरीर में पहुंचने के हर मार्ग से सुरक्षा प्रदान करे - यानी खून के ज़रिए और श्लेष्मा के ज़रिए। ऐसा टीका शायद तत्काल सम्भव न हो और हो सकता है कि हमें कोशिका-संचालित प्रतिरक्षा पर ही निर्भर रहना पड़े - यानी शरीर को बेहतर प्रशिक्षण देना कि वह वायरस संक्रमित कोशिकाओं को पहचानकर नष्ट कर पाए। इस तरह से वायरस का फैलाव रुक जाएगा। इसका अर्थ यह होगा कि वायरस की कुल मात्रा कम रहेगी और शरीर इसे पूरी तरह काबू में रख सकेगा। मतलब यह होगा कि आप वायरस-संक्रमित तो होंगे मगर एड्स उत्पन्न नहीं होगा।

किसी दिन हमारे पास दोनों तरह के टीके होंगे। वायरस के शुरुआती प्रवेश को रोकने के लिए और यदि इसमें से बचकर भी कोई वायरस शरीर में पहुंच जाए तो उसे काबू में रखने के लिए। मगर उम्मीद यही है कि प्रथम टीका वायरस के प्रवेश को तो नहीं रोक पाएगा किन्तु कोशिका के स्तर पर उसे काबू में रख पाएगा। व्यक्ति के जीवन की रक्षा करने के अलावा इन टीकों की एक सामाजिक भूमिका भी होगी। वायरस संक्रमित लोगों में वायरस की संख्या को कम करके ये टीके अन्य लोगों में संक्रमण की आशंका को कम करेंगे।

टीकों की जांच

अलग-अलग तरह के टीकों की जांच करना आसान

काम नहीं है। मानव प्रतिरक्षा विकसित करने के संदर्भ में जंतुओं का उपयोग ज़्यादा सार्थक नहीं होगा क्योंकि कोई भी जंतु इस वायरस से बीमार नहीं होता। दूसरी बात यह है कि जंतुओं का, यहां तक कि बंदरों का प्रतिरक्षा तंत्र भी हमसे बहुत भिन्न होता है। जंतु पर किए जाने वाले परीक्षणों से हमें टीके की सुरक्षा सम्बंधी जानकारी तो मिल सकती है मगर ये इंसानी परीक्षण का स्थान नहीं ले सकते - खासकर टीके की कारगरता के मामले में। जंतु परीक्षणों से पता नहीं चलेगा कि कोई टीका कारगर होगा या नहीं।

इंसानी परीक्षण लम्बे समय तक चलते हैं और महंगे होते हैं और इनमें प्रक्रियाओं का पालन सख्ती से करना होता है। इनमें बरसों तक कठिन, बारीकियों से भरा और उबाऊ काम करना पड़ता है। यह कहने की इच्छा होने लगती है कि औद्योगिक देशों को ये सारे परीक्षण करने दो और मात्र उनके लाभ विकासशील देशों को मिलें। एड्स के मामले में यह सम्भव नहीं है। कई कारणों से यह आवश्यक है कि परीक्षण विकासशील देशों में हों। पहला कारण तो यह है कि 90 प्रतिशत वायरस संक्रमण के मामले इन देशों में होते हैं। यहीं इस टीके का सबसे ज़्यादा उपयोग होगा। दूसरा कारण यह है कि प्रामाणिक व जल्द परिणाम प्राप्त करने के लिए ऐसी आबादियों में व्यापक परीक्षण करना ज़रूरी है जहां वायरस संक्रमण ज़्यादा हो। तीसरा कारण यह है कि एड्स वायरस अलग-अलग इलाकों में अलग-अलग किस्म का है। फिर यह भी देखना होगा कि अलग-अलग कारकों (जैसे अन्य संक्रमणों) का टीके की क्रिया पर क्या असर होता है।

ब्राज़ील, चीन, क्यूबा, हैटी, कीन्या, थाईलैण्ड, त्रिनिदाद और टोबेगो, बोत्सवाना और युगाण्डा जैसे कई विकासशील देश अब एड्स वैक्सीन के इंसानी परीक्षण में सक्रियता से शामिल हैं। भारत, कोट डी'आयवरी और दक्षिण अफ्रीका जैसे अन्य कुछ देश इंसानी परीक्षण की तैयारी कर रहे हैं। उनके शुरुआती प्रयासों को स्वीकार किया जाना चाहिए। इस मामले में थाईलैण्ड काफी आगे बढ़ चुका है। थाईलैण्ड के अलावा अन्य सारे विकासशील देशों में इंसानी परीक्षण अभी शुरुआती चरण में हैं।

इन छोटे-छोटे चरण 1 व चरण 2 के परीक्षणों से यह सुनिश्चित किया जाता है कि टीका इंसानों में हानिरहित है, शरीर में प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है तथा इसका कोई अप्रत्याशित असर नहीं है। इनमें से कुछ परीक्षणों में यह भी देखा जा रहा है कि टीके की सर्वोत्तम खुराक क्या होगी और कितनी बार देनी होगी। वास्तविक चुनौती तो चरण 3 के परीक्षण में सामने आएगी। यह वह चरण होगा जिसमें जांचा जाएगा कि क्या टीका वाकई कोई सुरक्षा प्रदान करता है। इन परीक्षणों के लिए लगभग बीस हज़ार लोगों की ज़रूरत होगी। यदि इनमें से कुछ लोग परीक्षण में पूरे समय तक नहीं बने रहते, तो परिणाम अप्रामाणिक होंगे, परीक्षण बेकार जाएगा। नियामक एजेंसियां - भारतीय औषधि महानियंत्रक, युरोप की पर्यावरणीय औषधि उत्पाद एजेंसी, यू.एस. खाद्य व औषधि प्रशासन वगैरह - मांग करती हैं कि परीक्षणों में बहुत सावधानी बरती जाए और रिकॉर्ड ध्यान पूर्वक रखे जाएं, अन्यथा वे इन परिणामों के आधार पर टीके की अनुमति नहीं देंगी।

एक विरोधाभासी बात यह है कि यदि रोकथाम के कार्यक्रम सफल रहे तो यह एड्स टीके की कारगरता के परीक्षण के लिए एक चुनौती होगी। यदि विभिन्न आबादियों में वायरस का संक्रमण कम हो गया तो परीक्षण के लिए और भी ज़्यादा संख्या में लोगों की ज़रूरत होगी। इससे शोधकर्ताओं की दिक्कत को समझा जा सकता है। इसी प्रकार से यह एक कारगर प्रथम टीका बन गया तो भावी टीकों का परीक्षण मुश्किल हो जाएगा। नैतिकता का तकाज़ा होगा कि अगले टीके के परीक्षण में प्लेसिबो की जगह प्रथम टीके का उपयोग तुलना के लिए किया जाए। ज़ाहिर है, इस तरह की तुलना के लिए सैम्पल का आकार बहुत विशाल रखना होगा। कम संख्या में वायरस संक्रमण वाले इलाकों में परीक्षण असम्भव हो जाएगा।

इंसानी परीक्षण एक कठोर नैतिक ढांचे में किए जाते हैं। इस सम्बंध में विश्व स्वास्थ्य संगठन - राष्ट्र संघ एड्स कार्यक्रम के एड्स वायरस सम्बंधी दिशा निर्देशों का

पालन करना होगा। इसमें अच्छी चिकित्सकीय विधियों के अलावा पूरी जानकारी देकर व्यक्ति की सम्मति प्राप्त करना भी शामिल है। इसके अलावा गोपनीयता व निजी स्वतंत्रता, सामाजिक क्षति व कलंक से बचाव आदि शर्तें भी होंगी।

पूरी जानकारी देकर सम्मति प्राप्त करने के प्रारूप पर काफी काम हुआ है। कम पढ़े-लिखे लोगों को यह विज्ञान और परीक्षण प्रक्रिया कैसे समझाई जाए? कभी-कभी जानकारी आधारित सम्मति के प्रारूप टेलीफोन डायरेक्टरी जैसी भारी-भरकम होते हैं और पता ही नहीं चलता कि ये उस व्यक्ति की सुरक्षा के लिए हैं या दवा कम्पनी या प्रायोजक के बचाव के लिए। एड्स टीके के परीक्षण के मामले में हमें सरल, न्यायपूर्ण व समझने योग्य प्रारूप बनाने होंगे।

इन परीक्षणों के दौरान कई अहम मुद्दों पर ध्यान देना होगा। मसलन, परीक्षण के दौरान वायरस से संक्रमित हो जाने वाले वॉलंटियर्स को किस तरह की देखभाल व उपचार उपलब्ध कराए जाएंगे। इसी प्रकार से यह भी सोचना होगा कि कारगर साबित हो जाने के बाद यह टीका लोगों को किसी तरह उपलब्ध कराया जाएगा। कानूनी रूप से अवयस्क किशोर वय के लोग वायरस संक्रमण के जोखिम से सबसे ज़्यादा ग्रस्त हैं। मगर सामाजिक-सांस्कृतिक व कानूनी वजहों से वे शायद ही इन परीक्षणों में शामिल हो सकें। हमें सोचना होगा कि क्या वर्तमान आबादी के अधिकार व सेहत को सुरक्षित रखते हुए भावी पीढ़ी को सुरक्षा प्रदान करने का यह सही तरीका है।

भारत के विशिष्ट सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश की वजह से कुछ खास अड़चनें आ सकती हैं। तकनीकी कठिनाइयों के अलावा भारत में इंसानी परीक्षणों के लिए वॉलंटियर्स जुटाना भी एक चुनौती होगी। अतीत में भारत में हुए कुछ टीका परीक्षणों की वजह से इंसानी जैव चिकित्सा अनुसंधान को लेकर शंकाएं पैदा हुई हैं। एड्स वायरस संक्रमित लोगों, खासकर स्त्रियों, में बदनामी का डर उन्हें परीक्षण में भाग लेने से रोक सकता है।

रोकथाम

एड्स टीके के परीक्षण रोकथाम को भी सुदृढ़ करते हैं। मसलन थाईलैण्ड में इन परीक्षणों में सहभागी लोगों को वायरस संक्रमण का खतरा सामान्य से कम है। कारण यह है कि टीके के परीक्षण के दौरान परामर्श का दबाव कहीं ज़्यादा होता है। वैसे भी रोकथाम के अन्य उपाय किए जाने चाहिए - क्योंकि पहला टीका बनने में अभी कई साल हैं। और यह टीका भी रोकथाम के समग्र कार्यक्रम के अंतर्गत ही उपलब्ध कराया जाएगा। रोकथाम के सारे उपायों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए, खासकर उन जगहों पर जहां वायरस रोधी दवाइयां बहुत महंगी हैं या अव्यावहारिक हैं। इस मुगालते में नहीं रहना चाहिए कि एड्स का टीका आते ही खतरा समाप्त हो जाएगा। कोई भी टीका सौ फीसदी कारगर नहीं होता। संक्रमित लोगों को टीका लगा हो या नहीं, वे अन्य लोगों को तो वायरस की सौगात दे ही सकते हैं। यानी टीका लग जाने का मतलब यह नहीं होगा कि आप वायरस संक्रमण से बच जाएंगे।

इसके अलावा एक तथ्य यह भी है कि वायरस संक्रमण के बाद एड्स के लक्षण उभरने में समय लगता है। इसलिए वास्तव में बीमारी का बोझ घटने में समय लगेगा। लिहाज़ा वायरस संक्रमित व एड्स ग्रस्त लोगों का आर्थिक बोझ और टीका दोनों कई बरसों तक साथ-साथ चलेंगे।

एक बात तय है - दूरगामी संकल्प और सारे प्रमुख पात्रों के बीच सहयोग बहुत ज़रूरी है। यह काम आसान नहीं है और त्वरित भी नहीं है। इसके लिए गहन अंतर्राष्ट्रीय सहयोग अनिवार्य है। यदि हमारा साझा लक्ष्य सफल होना है तो हमें सम्भावित असफलता में भी भागीदार होने को तैयार रहना होगा।

क्या इन सारे विरोधाभासों और तनावों ने एड्स टीके के विकास में अवरोध उत्पन्न किए हैं? मुझे नहीं लगता। तनाव तथा पूर्व-मान्यताओं का टूटना नए विचारों और मौलिक समाधानों के उभरने के लिए अनिवार्य है।

(स्रोत फीचर्स)